Subject: **Sociology**

Course: **M. A. Part I**

Paper II

Topic: **Social Change**

Prepared by ***Prof. Dharmshila Prasad***

Scanned with CamScanner

सामाजिक परिवर्तन का सघर्षवादी सिद्धान्त
(Cooflict Theories of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन का संघर्षवादी सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि समाज में परिवर्तन संघर्ष के द्वारा होता है। हर युग में दो परस्पर विरोधी वर्ग विद्यमान रहे हैं और उनके परस्पर संघर्ष से ही समाज में परिवर्तन होता है। संघर्ष-वादियों का कहना है कि द्वन्द्व एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इसके कारण सर्वदा सामाजिक तत्त्वों और समाज का नाश नहीं होता। समाज में व्याप्त कुछ स्थितियों

Scanned with CamScanner

के कारण द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है, जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत संघर्षवादी सिद्धान्तों के प्रवर्तकों में **गुमप्लोविज, कार्ल मार्क्स, डहरनडार्फ, लेविस कोजर** तथा **रैजेनहोफर** के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं —

गुमप्लोविज का सिद्धान्त (Ludwing Von Gumplowicz)

गुमप्लोविज के अनुसार संसार का इतिहास भिन्न-भिन्न तत्त्वों का सतत् संघर्ष है। पहले संघर्ष भिन्न-भिन्न प्रजातीय-संघर्ष समूहों में होता है, फिर इन प्रजातीय-समूहों से जो राज्य बनते हैं उनमें होता है। विभिन्न राज्यों के भीतर भिन्न-भिन्न वर्गों में भी संघर्ष चलता रहता है। कहने का तात्पर्य है कि यह संघर्ष कभी समाप्त नहीं होता। एक संघर्ष समाप्त होता है तो दूसरा शुरू हो जाता है, संघर्ष का सिलसिला सदा चलता रहता है। गुमप्लोविज का कहना है कि समाज का विकास 'अन्धे प्राकृतिक नियमों' (Blind natural laws) से होता है। जिस प्रकार भौतिक-जगत् का विकास निश्चित दिशा में हो रहा है उसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं हो सकता। उसी प्रकार समाज का विकास भी जिस दिशा में हो रहा है उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। गुमप्लोविज के अनुसार समाज की निश्चित दिशा सतत्-संघर्ष है। यह कभी मिटता नहीं है, बल्कि एक के बाद दूसरा उत्पन्न होता रहता है। एक समुदाय दूसरे समुदाय पर आक्रमण करता है। इसमें जो हारता है वह विजयी-समूह में विलीन हो जाता है। विजयी समूह पराजित समूह के सदस्यों को गुलामों की तरह रखते हैं और उनका शोषण करते हैं। सत्ता हाथ में आने के बाद वे तरह-तरह के कानूनों का निर्माण करते हैं, जिससे उनके शोषण का औचित्य मिले। इससे समाज में विभिन्न समूहों के बीच असमानता उत्पन्न होती है। संघर्ष में पराजित समूह जब विजयी-समूह के नियमों-कानूनों को मान लेता है, उनकी भाषा, धर्म आदि को अपना लेता है तब संघर्ष मिटता है। अर्थात् समूह में पुनः एकता आ जाती है, किन्तु फिर एक अन्य समुदाय संघर्ष के लिए सामने आ जाता है। इस प्रकार संघर्ष की यह प्रक्रिया संसार में सदा से चली आ रही है और चलती रहेगी। इससे छुटकारा का कोई विकल्प नहीं है क्योंकि संघर्ष की यह प्रक्रिया कभी मिटनेवाली नहीं है।

गुमप्लोविज मार्क्स के वर्ग-संघर्ष (Class Conflict) के सिद्धान्त से बहुत प्रभावित था। उसके विचारों को अपने विचार का आधार भी बनाया। किन्तु दोनों के विचारों में मौलिक भेद यह है कि मार्क्स के अनुसार वर्ग-संघर्ष को 'सामूहिक प्रयत्न' से मिटाया जा सकता है। सर्वहारा वर्ग जब उत्पादन के साधनों को अपने अधिकार में कर लेगा तब एक वर्ग हो जायेगा और एक वर्ग होते ही वर्ग-संघर्ष समाप्त हो जायेगा। गुमप्लोविज इस कथन से सहमत नहीं है। उसके अनुसार एक संघर्ष समाप्त होगा तो दूसरा उत्पन्न होगा। विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष 'विभिन्न स्वार्थों' के कारण होता है। इस संघर्ष में एक वर्ग दूसरे का आर्थिक शोषण करने लगता है। किन्तु वर्गों का निर्माण सिर्फ आर्थिक आधार पर ही नहीं होता, बल्कि महत्त्वाकांक्षा, अंहकार, अभिमान, वंश आदि के कारण भी होता है।

Scanned with CamScanner

आलोचना : गुमप्लोविज के विचारों से स्पष्ट होता है कि इनका दृष्टिकोण निराशावादी है।

वस्तुतः यह बात पूर्णतः सही नहीं है कि समाज में संघर्ष के द्वारा ही परिवर्तन होता है। समाज में सहयोग के द्वारा भी परिवर्तन होता है।

डहरेनडार्फ का सिद्धान्त (Theory of Dahrendorf) :

सामाजिक परिवर्तन के संघर्षवादी विचारकों में डहरेनडार्फ का नाम प्रमुख है। इन्होंने सत्ता के आधार पर संघर्ष को स्पष्ट किया। इनके अनुसार समाज में दो वर्ग होते हैं—पहला, जिनके हाथ में सत्ता होती है और दूसरा, जो सत्ता के अधीन रहते हैं। इन दोनों वर्गों की स्थितियों में फर्क होता है। जिनके हाथ में सत्ता होती है वे आज्ञा देते हैं। उनके पास सुविधाएँ होती हैं शक्ति और अधिकार होते हैं। जो सत्ता के अधीनस्थ होते हैं वे अभावग्रस्त होते हैं। वे उन सुविधाओं को पाना चाहते हैं, जिनसे वे वंचित होते हैं। इन्हें सत्तावान वर्ग की आज्ञाओं का पालन करना होता है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों वर्गों के हित अलग-अलग होते हैं तथा इनके अधिकार एवं कर्तव्य भी असमान होते हैं। इन्हीं बातों के लेकर दोनों वर्गों के बीच संघर्ष होता रहता है। डहरेनडार्फ ने बताया कि विभिन्न हितों, मूल्यों एवं नीतियों को लेकर दोनों वर्ग आपस में संघर्ष करते रहते हैं। ऐसे समय में तत्कालीन सत्ता का प्रयास होता है कि समाज में एकता एवं समन्वय बना रहे। सत्ता के दबाव से जो एकमत दिखता है वह वस्तुतः दबाव एवं उत्पीड़न पर आधारित होता है। फलस्वरूप समाज में धीरे-धीरे सत्ता का विरोध शुरू हो जाता है। डहरेनडार्फ ने बताया कि जिस प्रकार संघर्ष परिवर्तन को जन्म देता है उसी प्रकार दबाव संघर्ष को उत्पन्न करता है। यह संघर्ष सदैव सत्ता के विरुद्ध होता है। थोड़ा या ज्यादा सभी संस्थाओं में इस प्रकार का संघर्ष देखने को मिलता है। संघर्ष के आरम्भ होते ही नियमों और मूल्यों पर, सुविधाओं के बँटवारे पर, संरचना के स्वरूपों पर दबाव पड़ता है और उनमें परिवर्तन होता है। संघर्ष के काल में परिवर्तन तेज रफ्तार में होता है और बढ़ते-बढ़ते पूरे समाज में फैल जाता है। फलस्वरूप प्रतिष्ठा, अधिकार के असमान वितरण, सामाजिक संरचना और संस्कृति में गम्भीर परिवर्तन होते हैं।

आलोचना : डहरेनडार्फ के इस सिद्धान्त को अन्य विद्वानों ने अतिवादी कहा है। प्रकार्यवादियों का कहना है कि समाज में सदा संघर्ष ही नहीं होता रहता। समाज में संतुलन एवं व्यवस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

लेविस कोजर का सिद्धान्त (Lewis Coser's theory) :

अमेरिकन प्रकार्यवादी समाजशास्त्री **लेविस कोजर** ने अपनी पुस्तक 'Functions of Social Conflict' में सामाजिक परिवर्तन का संघर्षवादी सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इनका यह सिद्धान्त जार्ज सिमेल की धारणाओं पर आधारित है। सिमेल के अनुसार सामाजिक संघर्ष के कुछ सकारात्मक (Positive) पक्ष भी होते हैं। संघर्ष से एक समूह के सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध अधिक प्रबल हो जाते हैं। संघर्ष के

Scanned with CamScanner

माध्यम से इस बात का आभास होने लगता है कि 'हम अन्य समूहों से अलग हैं। कोजर ने भी संघर्ष से होने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तनों की चर्चा की है। उसने बताया कि सामाजिक संघर्ष के कुछ निश्चित प्रकार्य होते हैं जो सामूहिक एकता को बनाये रखने में मदद पहुँचाते हैं। संघर्ष के दौरान संघर्षरत पक्षों की आपसी एकता बढ़ जाती है। वे अपनी एकता को बढ़ाने तथा अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए नये प्रतीकों एवं चिह्नों को विकसित करते हैं। संघर्ष काल में समाज एकता एवं स्थायित्व को मजबूत करने लगता है।

कोजर ने संघर्ष के नकारात्मक परिवर्तन की भी चर्चा की है। उनके अनुसार संघर्ष के दौरान एक समूह के नियम, मूल्य, लक्ष्य तथा आदर्श समाप्त हो जाते हैं। अर्थात् समाज में एनोमी (anomei or normlessness) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कोजर ने बताया कि संघर्षरत पक्ष जब एक दूसरे के बिलकुल विरोधी होते हैं या विरोधी विचारधारा वाले होते हैं या विभिन्न संस्कृति के होते हैं तो इनके परिणाम ज्यादा खतरनाक होते हैं। सामाजिक संरचना एवं संस्कृति पर इसका प्रभाव विघटनकारी होता है। कोजर के अनुसार संघर्ष मूलतः आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होने की स्थिति में उत्पन्न होते हैं।

कोजर के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए एलेन ने कहा कि वे न पश्चिमी-पूँजीवादी समाजों की स्थिरता सिद्ध कर सके हैं और न ही सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या में प्रकार्यवाद की उपयोगिता सिद्ध कर सके हैं।

रेजेनहोफर का सिद्धान्त (Ratzenhoufor's theory) :

रैजेनहोफर के अनुसार संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। यह विभिन्न समूहों को एक दूसरे से अलग व दूर नहीं करता, बल्कि सामाजिक संरचना को संगठित करता है। संघर्ष किसी विशेष आर्थिक व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होता है। रैजेनहोफर ने बताया कि मानव के अन्दर अनेक जैविकीय प्रेरणायें होती हैं, जो उसे अपने हितों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं। उसने यह भी बताया कि जिस व्यक्ति में अपने हितों के प्रति जितना मोह होता है, उसमें उतना ही संघर्ष करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। विभिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के हित होते हैं, यही कारण है कि व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समूह तथा समूह-समूह में संघर्ष होते रहते हैं। समाज संघर्ष को कम करने के लिए सहयोग को प्रोत्साहित करता है ताकि सामाजिक व्यवस्था संतुलित रहे।

कालमार्क्स का सिद्धान्त (Marxian Theory of Change) :

सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक समाज में सदा से होते रहे हैं और इसके अनेक कारण भी बताये गये हैं। मार्क्स ने अपनी व्याख्या में सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष को ही प्रमुख कारक बताया। वैसे तो कई विद्वानों ने संघर्ष के परिणाम और इसके सामाजिक कार्यों का विश्लेषण किया है, किन्तु मार्क्स ने संघर्ष को सर्वोपरि कारण अथवा संघर्ष को एक प्रमुख स्रोत माना है। कहने का तात्पर्य है कि सामाजिक परिवर्तन संघर्ष से प्रारम्भ होता है इसके बाद सहयोग की अवस्था आती है और फिर संघर्ष शुरू हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तन का यह चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

Scanned with CamScanner

मार्क्स के संघर्षवादी सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या उसके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism), ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materiolism or Materialistic Interpretation of History) तथा वर्ग-संघर्ष (Class struggle) पर आधारित है।

मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद **हीगल के द्वंद्वात्मक अध्यात्मवाद** (Dialectical Idealism) पर आधारित है। उसने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट किया। मार्क्स के अनुसार संसार की आदि सत्ता आध्यात्मिक न होकर भौतिक पदार्थ है। भौतिक जगत् में परिवर्तन होता रहता है। पहले कुछ भौतिक जगत का विकास होता है, कुछ नष्ट होता है अथवा उनका विरोध होता है और फिर कुछ की पुनरावृति, विकास की प्रक्रिया द्वन्द्व गति से होती है। द्वंद्व न हो तो परिवर्तन ही नहीं होगा। विकास का यह क्रम सदैव चलता रहता है। मार्क्स ने बताया कि विकास की पृष्ठ-भूमि में समस्त प्राकृतिक पदार्थों में एक **आन्तरिक विरोध** (Inner Contradiction) रहता है जिससे भौतिक जगत् का विकास होता है। इसके तीन अंग होते हैं—वाद (Thesis), प्रतिवाद (Antithesis) और संवाद (Synthesis)। विकास भौतिक से चेतन की तरफ होता है, क्योंकि इस द्वंद्ववाद में विकास का प्रारम्भ भौतिक-सत्ता से होता है। यही कारण है कि मार्क्स की विचारधारा को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है।

मार्क्स के अनुसार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से ही इतिहास बनता है। इतिहास की प्रत्येक घटना का आधार भौतिक है। भौतिक का प्रत्यक्ष रूप आर्थिक होता है। उसने इतिहास की भौतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बताया कि मानव इतिहास में अबतक जो परिवर्तन हुए हैं, वे उत्पादन-प्रणाली (Mode of Production) में परिवर्तन के कारण ही हुए हैं। मार्क्स ने आर्थिक कारक को ही निर्णायक कारक बताया। उनके अनुसार मानव जीवन पर अन्य कारकों का प्रभाव पड़ता है, किन्तु वे सब परिवर्तन के निर्णायक कारण नही हैं। मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र एवं आवास) की पूर्ति के लिए उत्पादन करना पड़ता है। उत्पादन के लिए उत्पादन के साधनों को जुटाना पड़ता है। मानव जिन साधनों के द्वारा उत्पादन करता है उसे प्रौद्योगिकी कहते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव किसी-न-किसी उत्पादन-प्रणाली को अपनाता है। उत्पादन-प्रणाली के दो पक्ष होते हैं—**पहला, उत्पादन की शक्ति** अर्थात् प्रौद्योगिकी, श्रमिक, श्रम कौशल तथा कच्चा माल इत्यादि और **दूसरा, उत्पादन सम्बन्ध** अर्थात् समाज के लोगों का इन उत्पादन के स्रोतों और शक्तियों से सम्बन्ध। उदाहरण के लिए किसी कृषि क्षेत्र में उत्पादन करने के दौरान मजदूरों, लुहार, बढ़ई एवं उसकी उत्पादित वस्तु के खरीदारों के बीच पाया जानेवाला सम्बन्ध। इसी प्रकार अलग-अलग वर्गों के उत्पादन की शक्तियों से अलग-अलग सम्बन्ध होते हैं। उत्पादन-प्रणाली की खास विशेषता यह है कि इसमें सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन से उसमें विकास होता रहता है। फलस्वरूप समान वैधानिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का पुनर्गठन होता है। उत्पादन प्रणाली में होने वाला परिवर्तन सबसे पहले उत्पादन शक्तियों में होता है, बाद में उत्पादन सम्बन्धों में होता है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन सम्बन्धों से ही आर्थिक संरचना (Economic Structure) का निर्माण होता है। यही आर्थिक संरचना मौलिक आधार होती हैं, जिनपर वैधानिक

Scanned with CamScanner

और राजनीतिक संरचनाएँ निर्मित होती हैं, अधि-संरचना (Super Structure) में शामिल होती हैं। अर्थात् वे सभी चीजें जो अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी का अंग नहीं होतीं वे अधि संरचना में शामिल होती हैं। मार्क्स ने कहा कि जबतक आर्थिक संरचना (जो समाज की नींव होती है) में परिवर्तन नहीं होता तब तक वास्तविक परिवर्तन नहीं होता। अर्थात् आर्थिक संरचना में परिवर्तन होता है तो सम्पूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक अधिसंरचना में भी परिवर्तन होता है जिसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्ध में संघर्ष है।

मार्क्स ने उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्ध के आधार पर इतिहास को पाँच युगों में बाँटा है—

(i) आदिम साम्यवादी युग (Primitive Communism)
(ii) दास युग (Slave Society)
(iii) सामन्तवादी युग (Feudal Society)
(iv) पूँजीवादी युग (Capitalistic Society)
(v) समाजवादी युग (Socialistic Society)

मार्क्स के अनुसार इतिहास के प्रत्येक स्तर पर उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन होता आया है। इन्हें विभिन्न स्तरों में इस प्रकार समझा जा सकता है :—

आदिम साम्यवादी युग: —यह इतिहास का प्रारम्भिक युग था। इस युग में मनुष्य कन्द-मूल फल, शिकार आदि के द्वारा जीवन व्यतीत करता था। प्रत्थर के औजार और धनुष-बाण उत्पादन के प्रमुख साधन थे। उस समय मनुष्य कृषि, पशु-पालन आदि से अनभिज्ञ था। समाज में वर्ग चेतना नाम की कोई चीज नहीं थी। उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व था। व्यक्ति को निजी सम्पत्ति का बोध नहीं था। सभी लोग समान थे। कोई गरीब-अमीर नहीं था। समाज में वर्ग-हीनता की स्थिति थी। व्यक्ति स्वयं उत्पादन और उपभोग करता था।

दास युग :— इस युग में पशु-पालन तथा कृषि का आविष्कार हुआ। इससे मानव के घूमन्तु जीनव में ठहराव आया। अब तक जीवन-निर्वाह की सामग्री जो अनिश्चित थी वह निश्चित हो गई। इस स्तर में पशु-पालन एवं कृषि करना अकेले सम्भव नहीं था इसलिए दूसरों को अपने अधीन रखना शुरू हुआ। जिन व्यक्तियों का भूमि और उत्पादन के साधनों पर अधिकार था उन्होंने दूसरों को बलपूवर्क गुलाम बनाया तथा उनका शोषण करने लगे। अबतक मानव झुण्डों में जो युद्ध होते थे उनमें बन्दियों को मार दिया जाता था, किन्तु इस स्तर में उन्हें मारने की बजाय बन्दी बना कर रखना अधिक लाभदायक समझा गया। यही कारण है कि इसे दास युग कहा गया। दासत्व युग की चरम सीमा पर भूमि का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया और समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया—एक वर्ग जो भूमि और सम्पत्ति का स्वामी था और दूसरा जिसे उसने दास बना लिया। दास-वर्ग के श्रम द्वारा जो उत्पादन होता था उसका उपभोग शक्तिशाली वर्ग करने लगे। वर्गों के आते ही संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

Scanned with CamScanner

सामन्तवादी युग : इस युग में उत्पादन के साधनों पर राजाओं और सामन्तों का अधिकार हो गया। राजा स्वयं सारी भूमि का प्रबन्ध नहीं कर सकता था। इसलिए वह भूमि के बड़े-बड़े भाग सामन्तों को, जमींदारों को बाँट देता था। इसके बदले में वे राजा को लगान तथा सैनिक सेवायें देने लगे। जमीन्दार छोटे-छोटे किसानों को भूमि देते तथा उसके बदले में लगान लेते थे। किसान भी अकेले खेती नहीं कर सकते थे इसलिए वे अपनी भूमि पर अर्ध दास (Serfs) रखते थे। वस्तुतः कृषि तथा युद्ध का काम इन्हीं अर्ध-दासों से लिया जाता था। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व सामन्तों के हाथ में था, लेकिन उत्पादन-क्रिया में दासों पर पहले जैसा आधिपत्य नहीं था। वे उन्हें खरीद या बेच सकते थे, किन्तु उनका वध नहीं कर सकते थे। भूमि के मालिक सामन्त और उनके अधीनस्थ किसान थे, ये दोनों शोषक वर्ग थे। अर्ध-दास शोषित वर्ग थे। इनके 'अतिरिक्त मूल्य' का उपभोग शोषक वर्ग करते थे। अतः दोनों के बीच संघर्ष होता रहता था।

पूँजीवादी युग :—औद्योगिक क्रान्ति से पूँजीवादी युग का उदय हुआ। इस युग में नवीन यन्त्रों के निर्माण के साथ बड़े-बड़े-उद्योग-धन्धे पनपे और उत्पादन अनेक गुना बढ़ गया। इससे छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये, क्योंकि वे कारखानों में बनी चीजों से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते थे। इस प्रकार समाज की सम्पत्ति मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी और समाज दो वर्गों में बँट गया—(i) पूँजीपति वर्ग और (ii) श्रमिक वर्ग। पूँजीपति वर्ग ने श्रमिक वर्ग काकाफी शोषण किया। धीरे-धीरे पूँजीपति सम्पत्तिशाली बनते गये और श्रमिक निर्धन होते गये। पहली बार अल्पसंख्यक पूँजीपति वर्ग और बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग के बीच अपने-अपने हितों को लेकर परस्पर संघर्ष शुरू हुआ।

समाजवादी युग :—मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों के अत्यधिक शोषण के फलस्वरूप श्रमिकों में जागरूकता उत्पन्न होगी और दोनों वर्गों के बीच का संघर्ष एक ऐसी क्रान्ति को जन्म देगा, जिसमें पूँजीपति वर्ग की निश्चित रूप से हार होगी और श्रमिक वर्ग की विजय। इस प्रकार समाजवाद की स्थापना होगी और श्रमिक वर्ग का अधिनायक वाद (Dictatorship of the Proletariat) कायम होगा। इससे पूँजीपति तत्त्वों का विनाश होगा और वर्ग-विहीन तथा राज्य-विहीन समाज (Clas less and Stateless Society) की स्थापना होगी। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करेगा।'

मार्क्स के अनुसार सभी समाजों में सदैव दो वर्ग रहे हैं—शोषक और शोषित। ये दोनों अपने-अपने हितों को लेकर परस्पर संघर्ष करते रहे हैं। जब शोषक वर्ग की शोषण नीति असहनीय हो जाती है और उत्पीड़न बढ़ जाता है तब वह क्रान्ति का रूप ले लेता है जिसमें शोषक पराजित होगा और शोषित की विजय होगी। मार्क्स के अनुसार "अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।" विश्व इतिहास आर्थिक और राजनीतिक-शक्ति के लिए विरोधी वर्गों में संघर्षों की शृंखला है। वर्गों का विरोध आधुनिक समाज में भी विद्यमान है। मार्क्स ने बताया कि इस संघर्ष का अनिवार्य परिणाम पूँजीवाद का विनाश और सर्वहारा वर्ग की विजय के रूप में होगा।

Scanned with CamScanner

मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त वर्तमान समय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी सिद्धान्त माना जाता है। चूँकि मार्क्स ने बताया कि मानव इतिहास में अब तक जो परिवर्तन हुए हैं वे उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन के कारण हुए हैं इसलिए आलोचना भी काफी हुई हैं।

आलोचना :

1. सामाजिक व्यवस्था एक जटिल व्यवस्था है अतः इसमें होने वाले परिवर्तनों को सिर्फ आर्थिक कारक के आधार पर नहीं समझा जा सकता। सामाजिक परिवर्तन में सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक एवं जनसंख्यात्मक कारकों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ होता है।

2. मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी, आर्थिक सम्बन्ध एवं आर्थिक संरचना में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है, किन्तु वे यह नहीं स्पष्ट कर पाये कि प्रौद्योगिकी में परिवर्तन क्यों होता है ?

3. मैक्स वेबर ने धर्म को ही मानवीय व्यवस्थाओं का आधार बताया। उसने यह प्रमाणित किया कि धर्म पर भी आर्थिक संरचना जन्म लेती है। मैक्स वेबर ने यूरोप, अमेरिका आदि का उदाहरण देते हुए कहा कि उन देशों में पूँजीवाद प्रोटेस्टेंटवाद धर्म के कारण हुआ।

4. इतिहास की आर्थिक व्याख्या में मार्क्स का कहना है कि 'ऐतिहासिक विकास के पूँजवादी युग में बुर्जआ और श्रमिकवर्ग के बीच कटुता बढ़ती ही जायेगी, पूँजीवादी अधिक धनी और श्रमिक अधिक निर्धन होते जायेंगे,' यह वर्तमान तथ्यों की कसौटी पर खरा नहीं उतरा। अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश में पूँजीपतियों और श्रमिकों के मध्य कटुता में वृद्धि नहीं हुई है और श्रमिक वर्ग निर्धन होने की अपेक्षा अधिक धन कमाने लगा है।

5. मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष पर जोर दिया है, किन्तु समाज का विकास वर्ग-संघर्ष से नहीं, अपितु सामाजिकता, सामन्जस्य, एकता एवं सहयोग की भावना से होता है। इस विश्वास को ठुकराकर मार्क्स ने मानवता के प्रति अपराध किया है।

6. मार्क्स का यह कहना गलत सिद्ध हो रहा है कि समाज में सदैव दो वर्ग रहेंगे। आधुनिक युग में एक शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण वर्ग का विकास हुआ है वह है मध्यम वर्ग। इस वर्ग में प्रबन्धक, कुशल कारीगर, वकील, डॉक्टर तथा इन्जीनियर आदि शामिल हैं। सेबाइन ने लिखा है "यदि मार्क्स इंगलैण्ड को अपना आदर्श मानता तो सम्भवतः उसका वर्गों का विश्लेषण यह न होता। इसका कारण यह है कि इंगलैंड में पूँजीवादी-कृषि-अवस्था और मध्यम वर्ग की प्रधानता रही है।

Scanned with CamScanner